भारतीय साहित्य में शौरसेनी प्राकृत का योगदान

प्रोफेसर प्रेम सुमन जैन, उदयपुर

प्राचीन भारत में आर्य–संस्कृति का विकास पश्चिम से पूर्व की ओर माना गया है । वैदिक युग में जिन–जिन–भाषाओं का अधिक प्रचार था, भाषाविदों ने उन्हें तीन वर्गों में विभक्त किया है :– (क) उदीच्या या उत्तरीय विभाषा (ख)मध्यदेशीय विभाषा एवं (ग) प्राच्या या पूर्वीय विभाषा । आर्यों का प्राथमिक सम्पर्क भारत के उत्तर–पश्चिम भूभाग से हुआ था । वहाँ पर उन्होनें अपनी बौद्धिक क्षमताओं का अधिक विकास किया । फलस्वरूप उत्तर–पश्चिम क्षेत्र की जन–प्रचलित विभाषा उदीच्या अधिक व्यवस्थित और परिनिष्ठित हो गयी । इसी विभाषा में वैदिक साहित्य का प्रमुख भाग रचा गया । बाद में यहीं पर महर्षि पाणिनि ने भाषा को संस्कारित कर अष्टाध्यायी लिखी, जो लौकिक संस्कृत भाषा का आधार ग्रन्थ बना । वैदिक युग की **'छान्दस्'** भाषा और यह उदीच्या विभाषा साहित्यिक –भाषा के रूप में प्रतिष्ठित हुई । किन्तु उनमें अन्य जनबोलियों प्राकृत के तत्व भी समाहित होते रहे।

मध्यदेशी विभाषा भारत के जनजीवन से पूर्णतया जुड़ी रही । मध्यदेश भारत को चारों ओर से जोड़ने वाला भूभाग था । दक्षिण से उत्तर एवं पूर्व से पश्चिम की यात्रा मध्यदेश को स्पर्श कर ही की जाती थी । सूरसेन ,मथुरा ,काशी ,अवन्ति आदि इसके प्रमुख क्षेत्र थे। अतः जैसे संस्कृत का मूल आधार उदीच्या विभाषा बनी , उसी प्रकार प्राकृत की मूल धुरी मध्यदेशीय विभाषा बनी, जिसे बाद में शौरसेनी प्राकृत के नाम से अभिहित किया गया। जब उदीच्या का बौद्धिक समुदाय मध्यदेश और पूरब की ओर बढ़ा तब उनकी भाषा मध्यदेशीय विभाषा, शौरसेनी प्राकृत के घनिष्ठ सम्पर्क में आयी । शौरसेनी और संस्कृत का यह निकट सम्बन्ध आगे भी बना रहा । शौरसेनी प्राकृत के साथ ही संस्कृत नाटकों को जनाधार मिला। शौरसेनी, मध्यदेशीय विभाषा के इस महत्वपूर्ण प्रभाव और क्षेत्र को ध्यान में रखते हुए ही दक्षिण भारत में इसी भाषा को सम्पर्क भाषा माना गया और वहाँ के आचार्यों ने भी शौरसेनी में अपने सिद्धान्त और दर्शन के ग्रन्थ लिखे।

इसी प्रकार काव्यशास्त्रीय सिद्वान्तों का प्रतिपादन करते हुए आचार्य आनन्दवर्धन, भोजराज, मम्मट ,विश्वनाथ, पंडितराज जगन्नाथ आदि अलंकारियों द्वारा काव्य लक्षणों के उदाहरण के लिए प्राकृत पद्यों को उद्धृत करना प्राकृत के साहित्यिक सौन्दर्य का परिचायक है । इस प्रकार वैदिक युग,महावीर युग एवं उसके बाद के विभिन्न कालों में प्राकृत भाषा का स्वरूप क्रमशः स्पष्ट हुआ है और उसका महत्व विभिन्न क्षेत्रों में बढ़ा है ।

भारतीय भाषाओं के आदिकाल की जनभाषा से विकसित होकर प्राकृत स्वतन्त्र रूप से विकास को प्राप्त हुई। बोलचाल और साहित्य के पद पर वह समान रूप से प्रतिष्ठित रही है। उसने देश की चिन्तनधारा, सदाचार और काव्य–जगत् को अनुप्राणित किया है । अतः प्राकृत भारतीय संस्कृति की संवाहक भाषा है । प्राकृत के स्वरूप की ये कुछ ऐसी विशेषताएं हैं, जो प्राचीन समय से आज तक लोक–मानस को प्रभावित करती रही हैं। तभी प्राकृत कवि के इस उद्गार से सहमत होकर कहना पड़ता है कि–"प्राकृत काव्य के लिए नमस्कार है और उसके लिए भी जिसके द्वारा प्राकृत काव्य रचा गया है । उनको भी हम नमस्कार करते हैं, जो प्राकृत काव्य को पढ़कर उसे हृदयंगम करते है" । यथा–

पाइयकव्वस्स नमो, पाइयकव्वं च निम्मियं जेण ।
ताहं चिय पणमामो, पढिऊण य जे वि याणन्ति ।।

सामान्य प्राकृत : शौरसेनी प्राकृत :

संस्कृत में प्राकृत का व्याकरण लिखने वाले वैयाकरणों का प्रमुख लक्ष्य काव्य भाषा प्राकृत के स्वरूप को प्रकट करना रहा है । काव्य,नाटकों, कथाओं में प्रयुक्त प्राकृतों में उन्हें सामान्य प्राकृत वही प्रतीत हुई, जिसके अपने कोई विशेष लक्षण नहीं थे । अतः अधिकांश वैयाकरणों ने महाराष्ट्री को सामान्य प्राकृत के रूप में प्रस्तुत किया । किन्तु जो वैयाकरण यह जानते थे कि सामान्य प्राकृत के प्रायः सभी लक्षणों को समेटे हुए जो अन्य विशिष्ट लक्षणों से भी युक्त है ऐसी शौरसेनी प्राकृत प्रमुख है, उन्होंने शौरसेनी प्राकृत को आधारभूत प्राकृत कहा –**प्रकृतिः शौरसेनी**'–वररुचि, प्राकृतप्रकाश, 11

शौरसेनी को मूल प्राकृत मानने की परम्परा श्रमण संस्कृति में विद्यमान है । शूरसेन प्रदेश और सूरसेनों की भाषा होने से यह शौरसेनी बाद में विकसित अन्य प्राकृतों से इतिहास की दृष्टि से प्राचीन है । वैदिक युग में मध्यदेश की समर्थ जनबोली होने से इस शौरसेनी प्राकृत का विस्तार क्षेत्र विकसित था, जबकि अन्य प्राकृतें अपने स्थान तक ही सीमित रहीं । मध्यदेश के पड़ौसी भूभाग मगध में विकसित होने वाली मागधी प्राकृत को पालि, अर्धमागधी आदि प्राकृतों का आधार माना जाता है ,जबकि स्वयं मागधी को आधारभाषा शौरसेनी प्राकृत थी । भरत ने शौरसेनी के नियम और गाथाओं को अपने नाट्यशास्त्र में सम्मिलित किया । प्राचीन प्राकृत वैयाकरण वररुचि ने स्पष्ट किया कि मागधी की प्रकृति शौरसेनी को जानना चाहिये–**अस्या मागध्याः प्रकृतिः शौरसेनीति वेदितव्यम्** ।–2–11 त्रिविक्रम ने भी इसी का समर्थन किया (3–2–27)। पैशाची प्राकृत की प्रकृति भी शौरसेनी प्राकृत है । 7वीं शताब्दी के महाकवि रविषेण ने भी सामान्य भाषा प्राकृत को शौरसेनी मानते हुए उसे व्याकरण आदि से सुसंस्कारित और लोकभाषा माना है, जिसकी ज्ञाता कैकयी थी–

नामाख्यातोपसर्गेषु निपातेषु च संस्कृता ।
प्राकृती शौरसेनी च भाषा यत्र त्रयी स्मृता ।। –पद्मपुराण, 24–11

लगभग 10वीं शताब्दी के कवि राजशेखर के युग तक तो शौरसेनी ही नाटक काव्य की भाषा थी । सट्टक साहित्य में तो वह 18वीं शताब्दी तक प्रयुक्त होती रही । प्राकृत का उत्पत्ति स्थान कौन–सा है और मूल प्राकृत कौन–सी है ? इस पर विस्तृत विमर्श करते हुए प्रो. मनमोहन घोष ने यह निष्कर्ष दिया है कि भारत का मध्यदेश ही प्राकृत का उद्भव स्थल है । वैयाकरणों द्वारा प्रयुक्त प्राकृत शब्द का अर्थ शौरसेनी प्राकृत है । दिगम्बर परम्परा में लिखित जैन आगम ग्रन्थों की भाषा शौरसेनी प्राकृत भी इसी मत को पुष्ट करती है । इस मूल प्राकृत शौरसेनी से ही अन्य प्राकृतों– मागधी पैशाची , महाराष्ट्री आदि का विकास हुआ है– The Indian midland was the original home of prakrit. This would bring Sauraseni and Prakrit very near to each other, and they may in fact be the same language, considered to be different by grammarians owing to the reasons suggested above. That the unnamed Prakrit of the Digambara jain Canon has a marked Sauraseni character may well support this view.[1]

डॉ. घोष ने अपने इस विस्तृत लेख में विभिन्न प्रमाणों द्वारा यह स्पष्ट किया है कि प्रमुख वैयाकरणों एवं काव्यशास्त्रियों ने सामान्य प्राकृत के रूप में शौरसेनी को स्वीकार किया है और कई ने तो महाराष्ट्री एवं अर्धमागधी का नाम ही नहीं लिया । वे चार प्राकृतों का ही उल्लेख करते हैं– शौरसेनी , मागधी , पैशाची एवं अपभ्रंश । अतः महाराष्ट्री प्राकृत शौरसेनी प्राकृत का परवर्ती विकसित रूप है ।[2] प्रो. घोष ने आचार्य भरत के नाट्यशास्त्र में प्राप्त शौरसेनी प्राकृत गाथाओं का आलोचनात्मक अध्ययन भी प्रस्तुत किया है ।[3] प्रो. पी. एल. वैद्या ने भी अपने एक लेख में यह स्पष्ट किया है कि संस्कृत नाटकों में प्रयुक्त प्राकृत मुख्य रूप से शौरसेनी प्राकृत थी । शौरसेनी ही मागधी और अर्धमागधी का मूल आधार थी ।[4] प्रो. ए. एम. घाटगे ने नाटकों में प्रयुक्त शौरसेनी की प्रमुख विशेषताओं का विश्लेषण किया है और पाया है कि शौरसेनी को सामान्य प्राकृत के रूप में वहाँ स्वीकार किया गया है ।[5] इसी शौरसेनी का अध्ययन जर्मन विद्वान् आर. श्मिदित ने भी किया है,[6] जिसका अंग्रेजी अनुवाद प्रो. एस. आर. बनर्जी ने जैन जर्नल में प्रकाशित किया है ।

———————————————

1. घोष :' महाराष्ट्री–ए लेटर फेज आफ शौरसेनी' नामक लेख
2. Pkt. was nothing other than Sauraseni, for these authors know only S , Mg., P., and A. .
3. Prakrit Verses in the Bharata--Natyasastra --by Manomohan Ghosh
4. On The Use of Prakrit Dialects In Sanskrit Dramas --by P. L. Vaidya
5. Sauraseni is taken to be the normal Prakrit of the Sanskrit dramas --' Sauraseni Prakrit '
6. R. Schmidt ; Elementarbuch der Sauraseni , Hannover , 1924 , p. 10

इस प्रकार साहित्य में शौरसेनी प्राकृत की प्रमुखता , वैदिक युग में प्राकृत के प्रमुख क्षेत्र मध्यदेश (शूरसेन जनपद) की प्राचीनता , शौरसेनी प्राकृत का देश के विभिन्न भागों में प्रयोग और विभिन्न प्राकृतों के प्रमुख लक्षणों का शौरसेनी में समावेश आदि प्रमुख कारण हैं जो शौरसेनी प्राकृत को भारत देश की मूल जनभाषा प्राकृत के पद पर प्रतिष्ठित करते हैं ।

दिगम्बर जैन ग्रन्थों की भाषा शौरसेनी प्राकृत एवं नाटकों में प्रयुक्त नाटकीय शौरसेनी प्राकृत उसी मूल शौरसेनी प्राकृत के परवर्ती रूप हैं, जिनमें समानता अधिक , भिन्नता कम है । प्राकृत वैयाकरणों ने अपने ग्रन्थों में शौरसेनी की जो प्रमुख विशेषताएँ गिनायी हैं , वे उसकी विशिष्टता बताने के लिए हैं । अन्यथा प्राकृत के प्रायः सभी नियम शौरसेनी के नियम ही हैं क्योंकि केवल विशिष्ट 15–20 नियमों से कोई भी प्राकृत व्यवहार में नहीं लायी जा सकती है । प्रसिद्ध जर्मन विद्वान् डोल्ची नित्ति का भी सुझाव है कि वररुचि द्वारा जो 14 सूत्र पैशाची प्राकृत के लिए दिये हैं उसके अतिरिक्त प्रारम्भ में दिये गये सामान्य प्राकृत के 424 सूत्र भी पैशाची पर लागू हैं । यही बात अन्य प्राकृत भाषाओं पर समझनी चाहिए ।[7] अतः शौरसेनी प्राकृत के व्यापक स्वरूप को समझने के लिए सभी प्राकृतों के साथ उसके सम्बन्ध को समझना होगा । इसके लिए विभिन्न प्राकृतों की संक्षिप्त जानकारी उपयोगी होगी ।

नाट्यशास्त्र के प्रणेता भरत मुनि ने नाटकों में प्रयुक्त होने वाली प्राकृत भाषाओं का नाट्यशास्त्र में इस प्रकार उल्लेख किया है –

मागध्यवन्तिजा प्राच्या शौरसेन्यार्धमागधी ।
बाल्हीका दाक्षिणात्या च सप्तभाषा प्रकीर्तिताः ।।– 18. 35–36

अर्थात् मागधी, अवन्ती, प्राच्या, शौरसेनी, अर्धमागधी, बाल्हीका एवं दाक्षिणात्या ये सात भाषाएँ कही गई हैं । इन भाषाओं का नाटकों में कैसे और कहाँ प्रयोग हुआ है, उसका विवेचन विद्वानों ने किया है।[11] इससे यह स्पष्ट है कि ईसा पूर्व तीसरी शताब्दी के लगभग शौरसेनी , मागधी , और अर्धमागधी ये तीन प्रमुख प्राकृत भाषाएँ थीं ।

भरत मुनि और शौरसेनी :

भरत मुनि ने अपने नाट्यशास्त्र में विभिन्न प्राकृतों के नाम के साथ शौरसेनी का उल्लेख कर 'प्राकृत' भाषा के कुछ नियम और उदाहरण भी दिये हैं । प्रारम्भ में 10 गाथाएँ प्राकृत में ही लिखी मिलती हैं । किन्तु बाद की गाथाएँ 11 से 25 संस्कृत श्लोक के रूप में हैं,[2] जो सम्भवतः किसी संस्कृत–प्रेमी लिपिकार ने कर दिये होगें ।

भरत के द्वारा उल्लिखित 'प्राकृत' भाषा एवं अन्य नाटककारों द्वारा प्रयुक्त 'प्राकृत' भाषा का आशय शौरसेनी प्राकृत है, यह मत प्रो. मनमोहन घोष आदि विद्वान् सिद्ध कर चुके हैं । भरत के द्वारा उल्लिखित ये प्राकृत के नियम भी दिगम्बर जैन परम्परा के सिद्धान्त ग्रन्थों की भाषा में प्रायः उपलब्ध हैं । कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं –

———————————————

7. प्राकृत के व्याकरणकार (ले ग्रामेरिआँ प्राकृत) , पृ 0 1–3

8. हिस्टोरिकल लिंग्नियुस्टिकस् एण्ड इण्डो–आर्यन लेग्युएजेज, पृ0 36

9. जैन साहित्य का वृहत् इतिहास, भाग 1, प्राक्कथन ।

10. शास्त्री ,नेमिचन्द्र ; भगवान् महावीर और उनकी आचार्य परम्परा ।

11. कर्पूरमंजरी (सम्पा. –मनमोहन घोष) , भूमिका, 1948, कलकत्ता

12. प्राकृत शब्दानुशासन (त्रिविक्रम)–, परिशिष्ट , पृ0 472–475

भरत नाट्यशास्त्र				दिगम्बर जैन सिद्धान्त ग्रन्थ
1–ख, घ, थ, ध और भ का 'ह' में परिवर्तन –				
मुख	> मुह			मुह (निय. 8)
मेघ	>मेह			मेह
कथा	>कहा			बंधकहा
प्रभूत	>पहूद =			पहुदि (निय. 14) , पहु (पंचा. 27)
2– ट् का ड् –				
कुटी	>कुडी	=		कोडी (षट. 1–5–18)
कटक	>कडअ	=		कडअ (समय. 130) कडय
3– प का व –				
आपान	>आवाण	=		आवण्ण (सम. 139) , तव (सम.152)
4– च को लोप–				
अचिर	>अइर	=		अइर (भावपा. 79) , पवयण
5– ध को ह–				
यथा	>जधा	=		जधा (प्रव. 68) जहा
तथा	>तधा	=		तधा (प्रव. 68) तहा
6– संयुक्त व्यंजनों के परिवर्तन –				
पथ्य	>	पच्छ	=	पच्छ (भाव. 73)
मह्यं	>	मज्झं	=	मज्झ (प्रव. 73)
दृष्ट	>	दट्ठ	=	दट्ठ (भाव. 15)
उष्ण	>	उण्ह	=	उण्ह (प्रव. 68)
ब्रह्मा	>	बम्हा	=	बम्हा (षट. 5–5–12)
शक्र	>	सक्क	=	सक्क (बारह. 5)

ऐसे अनेक उदाहरण मिल सकते हैं । इनके अतिरिक्त भरत के इन नियमों में 13वें श्लोक में उसने सम्भवतः शौरसेनी के उस प्रसिद्ध नियम का उल्लेख किया है जिसमें अनादि तकार को दकार होता है– **अस्पष्टश्च दकारो भवत्यनादौ तकारइतराद्यः** । यथा–

लता > लदा , चतुर्गति >चदुग्गदि , गच्छति > गच्छदि आदि ।

वैयाकरणों ने **शेषं प्राकृतवत् या महाराष्ट्रीवत्** कहकर शौरसेनी प्राकृत की अन्य विशेषताओं को अपने में समेट लिया है । आधुनिक भाषाविदों ने , जो वैयाकरणों ने नियम दिये हैं, उन्हें ही आधार बना कर शौरसेनी के नियमों का निर्देश कर दिया है । डॉ. पिशल ने इस विषय में जो कुछ भी अधिक प्रयास किया है, उसे भी पर्याप्त नहीं माना जा सकता । क्योंकि उनके समक्ष पूरा शौरसेनी साहित्य उपलब्ध नहीं था। अतः कुन्दकुन्द आदि आचार्यों के ग्रन्थों में प्रयुक्त शौरसेनी के वैशिष्ट्य को निर्धारण करने के लिए स्वतन्त्र रूप से चिन्तन करना आवश्यक हो जाता है ।

डॉ. नेमिचन्द्र शास्त्री ने अवश्य सिद्धान्तें–ग्रन्थों की शौरसेनी प्राकृत के नियमों को सम्मिलित करते हुए कुछ विस्तार से शौरसेनी के नियम दिये हैं ।[15] डॉ. ए. एम. घाटगे ने अपने एक निबन्ध में नाटकों में प्रयुक्त शौरसेनी नियमों की चर्चा की है[16] षट्खण्डागम एवं कषायपाहुड आदि ग्रन्थों के सम्पादकों ने भी परम्परागत रूप से ही शौरसेनी के नियमों की संक्षेप में चर्चा की है । पं. हीरालाल शास्त्री ने वसुनन्दिश्रावकाचार के परिशिष्ट में शौरसेनी को स्पष्ट करने का अच्छा प्रयत्न किया है । पं. बालचन्द्र शास्त्री ने ' **षट्खण्डागम : एक परिशीलन**' में ग्रन्थ की भाषात्मक सामग्री प्रस्तुत की है, जो उपयोगी है ।

———————————————

13. प्राकृत भाषा एवं साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृ0 79

14. प्रवचनसार , अंग्रेजी भूमिका , पृ0116 एवं हिन्दी अनुवाद (प्रो. लक्ष्मीचन्द्र जैन) –प्रवचनसार – एक अध्ययन, दिल्ली , 1990, पृ0 106–121

15. अभिनव प्राकृत व्याकरण, पृ0 383–394

16. 'शौरसेनी प्राकृत' जर्नल आफ द युनिवर्सिटी आफ बम्बई, जिल्द 3 भाग 6, 1935

साहित्य के ग्रन्थों में भी शौरसेनी को 'प्राकृत' शब्द से जाना जाता रहा है । शूद्रक के मृच्छकटिक में सूत्रधार घोषणा करता है कि –"यह मैं कार्य के वश से और प्रयोग की पालना के लिए 'प्राकृत' बोलने वाला बन जाता हूँ ।[20] इसके बाद सूत्रधार जो प्राकृत–संभाषण करता है, वह सभी अंश शौरसेनी प्राकृत का कहा गया है । आठवीं शताब्दी में रचित उद्द्योतनसूरिकृत कुवलममाला में भी पाययमासा और 'मरहट्टय देशी भासा' को अलग–अलग माना गया है । अपभ्रंश और पैशाची का वहाँ अलग उल्लेख है । अतः लेखक ने शौरसेनी का उल्लेख न कर उसे प्राकृत भाषा के रूप में व्यक्त किया है । इसके बाद का कवि राजशेखर तो शौरसेनी में ही पूरा ग्रन्थ कर्पूरमंजरी लिखा है । और वह तब प्रमुख/सामान्य प्राकृत के रूप में समझी जाने के कारण ग्रन्थ की भाषा का उल्लेख भी नहीं करता । वह अपने दूसरे ग्रन्थ काव्यमीमांसा में भी चार भाषाओं में संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश और पैशाची का उल्लेख करता है ।[21] यहाँ भी वह प्राकृत को शौरसेनी मानता है । इन सब उल्लेखों से शौरसेनी प्राकृत की प्रमुखता प्रतीत होती है ।

प्राकृत भाषाओं का सम्मिलित नाम 'प्राकृत' के अतिरिक्त प्राचीन समय में 'नानाभाषा', देशभाषा, देशीभाषा के रूप में भी प्रचलित था। महाभारत ,भरत–नाट्यशास्त्र, कामसूत्र, जैनसूत्रें मे इसके उल्लेख है ।[22] देशीभाषा के साथ बाद में अठारह शब्द और जुड़ गया तब 18 देशी भाषाएँ प्राकृत के रूप में जानी जाने लगीं । चण्ड ने भी प्राकृतों के इस प्राचीन नाम को अपने प्राकृत व्याकरण में समाहित किया है । परवर्ती वैयाकरणों एवं काव्य–शास्त्रियों ने प्राकृतों के नामों की संख्या में पर्याप्त वृद्धि की है । किन्त प्रायः सभी ने शौरसेनी, मागधी, पैशाची और अपभ्रंश इन चार भाषाओं का उल्लेख कर उनके सम्बन्ध में प्रसंगानुसार विवरण भी दिये हैं। अतः प्राकृतों के नामों में शौरसेनी नाम बहु प्रचलित रहा है। उसका क्षेत्र व्यापक था ।

भौगोलिक एवं ऐतिहासिक दृष्टि से देखा जाय तो प्राकृत के नामों में सूरसेन देश में विकसित भाषा शौरसेनी और मगध के आधे क्षेत्र (विषय) में प्रचलित अर्धमागधी यही दो परिभाषाएं प्राकृतों की मूलाधार प्राकृत को तय कर सकेंगी । वैयाकरण लक्ष्मीधर ने अपने ग्रन्थ षड्भाषाचन्द्रिका (पृ. 2) में स्पष्ट किया है कि 'शूरसेन' देश में उत्पन्न भाषा 'शौरसेनी' कही जाती है तथा मगधदेश में उत्पन्न भाषा को मागधी कहते हैं । –

सूरसेनोद्भवा भाषा शौरसेनीतिगीयिते ।
मगधोत्पन्नभाषां तां मागधीं संप्रचक्षते ।।

इतिहास से स्पष्ट है कि शूरसेन जनपद का अस्तित्व इस देश में मगध भूभाग की स्थापना से प्राचीन है । सूरसेन, मध्यदेश की संस्कृति ही प्राच्या, मगध की ओर बढ़ी है अतः शौरसेनी प्राकृत ही मगध की भाषा मागधी के विकास का आधार बनी है । और मागधी के आधे भूभाग की भाषा अर्धमागधी के रूप में प्रचलित हुई है । शूरसेनों की भाषा शौरसेनी के रूप में प्रचलित तो हुई ही है , साथ ही शूरों (क्षत्रियों) की भाषा होने के कारण भी इसका नाम शौरसेनी सार्थक हो सकता है । मध्यदेश एवं शूरसेन कर्म से एवं जन्म से क्षत्रिय धर्म को निवाहने वालों का भूभाग रहा है । उन शूरसेनों की भाषा शौरसेनी प्राकृत का जनबोलियों में प्रमुखता प्राप्त करना स्वाभाविक है । प्राकृतों को जो देशभाषा या देशी भाषा कहा गया है वह देश भर में प्रचलित होने के कारण, देश = जन–समुदाय की भाषा होने के कारण तो सार्थक है ही, मध्यदेश की भाषा प्राकृत है इस सूचना हेतु भी मध्यदेश में से 'देश' पद को भाषा के साथ जोड़ा गया है । आ. भरत ने प्राकृत के कुछ नियम बताकर कह दिया कि बाकी लक्षण देशी भाषा (शौरसेनी) में प्रसिद्ध हैं । विद्वान् वहाँ के प्रयोगों से ज्ञात करें :–

एवमेतन्मया प्रोक्तं किंचित् प्राकृत लक्षणम् ।
शेषं देशी प्रसिद्धं च ज्ञेयं विप्राः प्रयोगतः ।। –ना. शा. 25

---

17. मागध्यवन्तिजा प्राच्या शौरसेन्यार्धमागधी ।
वाल्हीका दाक्षिणात्या च सप्तभाषाः प्रकीर्तिताः –17–48
18. सेठ, हरगोविन्ददास ; पाइअसद्दमहण्णव , भूमिका , पृ0 38
19. प्राकृत व्याकरण (गुजराती), प्रस्तावना एवं प्राकृत शब्दकोश की भूमिका , पृ0 35
20. मृच्छकटिकं, अंक । , 8वें श्लोक का कथन ।
21. काव्यमीमांसा, पटना, 1954, पृ0 14
22. महाभारत, शल्यपर्व 46,103 ; नाट्यशास्त्र 17,24,46 ; कामसूत्र , 1–4–50

प्राकृत भाषाओं के इतिहास में शौरसेनी प्राकृत प्रारम्भ से प्रमुख भेद के रूप में रही है । प्राचीन समय से उसमें पहले सिद्धान्त ग्रन्थ लिखे गये हैं । प्राचीन समय से ही वह अन्य भाषाओं के तत्वों को समेटे रही है । अतः दिगम्बर परम्परा के प्राकृत ग्रन्थों की जो भी भाषा उभर कर सामने आती है, वह शौरसेनी प्राकृत है । उसे इसी नाम से पहिचाना जाना चाहिए। किसी विशेषण लगाने की इसमें आवश्यकता नहीं है । इस शौरसेनी प्राकृत से विकास कर जिस भाषा ने अपने को केवल नाटकों तक सीमित कर लिया है, उसे नया नाम 'नाटकीय–शौरसेनी' प्रदान करना सर्वथा उचित है। क्योंकि इस 'नाटकीय शौरसेनी' की प्रायः सभी प्रमुख विशेषताएँ मूल शौरसेनी में उपलब्ध है । इसे थोड़े से प्रयत्न से भी खोजा सकता है । डॉ. नेमिचन्द्र शास्त्री ने इन दोनों शौरसेनी के प्रमुख नियमों के उदाहरण दिये हैं और कहा है कि सिद्धान्त ग्रन्थों (जैन) शौरसेनी का विकसित और परिवर्तित रूप ही नाटकीय शौरसेनी है ।[23]

अर्धमागधी प्राकृत में प्रमुख रूप से श्वेताम्बर जैन आगम साहित्य आज उपलब्ध है । आचारांगसूत्र , सूत्रकृतांग, उत्तराध्ययनसूत्र ,ज्ञाताधर्मकथा आदि प्रसिद्ध आगम इसी अर्धमागधी प्राकृत में हैं । यद्यपि इनकी भाषा के स्वरूप के कई स्तर विद्वानों निश्चित किये हैं । अर्धमागधी प्राकृत की व्याकरण एवं ध्वनि–परिवर्तन की दृष्टि से कई विशेषताएँ प्राचीन एवं अर्वाचीन भाषाशास्त्रियों ने गिनायी हैं एवं उनके उदाहरण भी दिये हैं। **24**

डॉ. के. आर. चन्द्रा ने वर्तमान अर्धमागधी आगमों में महाराष्ट्री के प्रभाव की प्रचुरता और सम्पादकों द्वारा प्राचीन रूपों को कम अपनाने के कारण आचारांगसूत्र की प्राचीन अर्धमागधी के स्वरूप को खोजने का श्रमसाध्य महत्वपूर्ण कार्य किया है ।**25** उन्होंने अपनी पुस्तक में अर्धमागधी की प्राचीनता के जो उदाहरण या नियम स्वीकार किये हैं, उनमें से अधिकांश प्रवृत्तियों को हम सिद्धान्त ग्रन्थों की शौरसेनी प्राकृत में भी देख सकते हैं ।

प्रवृत्ति	**अर्धमागधी प्रयोग**	**शौरसेनी प्रयोग**
क को ग	सरपादगं	कुलगरो,सावगो, जाणुगं (षट्.)
त को द	भविदव्वं	भवदु, गोदम , परिणदो (षट्.)
थ को ध	तधा ,जधा	तधा ,जधा , कधं (षट्.)
आत्मा के रूप	अत्ता ,अप्पा	अत्ता , अप्पा (सम. 83 एवं 29)
पंचमी ए.ब.	बहुसो,सव्वसो	बहुसो (षट. 4–3–12)
सप्तमी ए. ब.	इमम्हि	जम्हि , तम्हि , एदम्हि (षट्.)
विधिलिंग	चरे, लभे, चिट्ठे ,सिया	वंदे , हवे (नियम. 11,17)
	बूया	सिया (षट. 1–827)
सम्बन्ध कृदन्त	पप्प, किच्चा णच्चा,	पप्पा (प्रव. 65, 83)
त क ड	कडे (कृत)	पहुडि (प्रभृति) , पयडि (प्रकृति)
नपुं. ब. ब.	कम्माणि	कम्माणि ,णाणाणि (षट्.1–119)

इस प्रकार के प्राचीन प्रयोगों को शौरसेनी प्राकृत के सिद्धान्त ग्रन्थों से एकत्र कर यदि श्रमपूर्वक अध्ययन किया जाय तो शौरसेनी और अर्धमागधी दोनों भाषाओं के स्वरूप को सही आकार मिल सकता है । इन दोनों भाषाओं के समान स्रोत को खोजा जा सकता है । तभी प्राचीन ग्रन्थों का सम्पादन–कार्य भी सार्थक होगा ।

शौरसेनी प्राकृत के प्राचीन ग्रन्थों को लिखने वाले आचार्यों की लम्बी परम्परा रही है । प्राचीन ग्रन्थों, पट्टावलियों एवं अभिलेखों में शौरसेनी प्राकृत के इन आचार्यों का वर्णन प्राप्त होता है । उनके सम्बन्ध में अधिक प्रकाश प्रत्येक ग्रन्थ के टीका–साहित्य से पड़ता है । आधुनिक विद्वानों ने शौरसेनी प्राकृत के प्रमुख आचार्यों और उनके ग्रन्थों का विश्लेषण भी प्रस्तुत किया है ।[27]

---

23. अभिनव प्राकृत व्याकरण, वाराणसी, पृ0 393

24 चन्द्रा, के. आर. ; प्राकृत भाषाओं का तुलनात्मक व्याकरण, पृ0 30–33

25. प्राचीन अर्धमागधी की खोज में, अहमदाबाद, 1991, पृ0 35–52

27. (क) जैन, हीरा लाल भारतीय संस्कृति में जैन धर्म का योगदान, भोपाल, 1964
(ख) शास्त्री, नेमिचन्द्र, तीर्थंकर महावीर और उनकी आचार्य परम्परा, भाग 2

शिलालेखीय साहित्य :

शौरसेनी प्राकृत का क्षेत्र व्यापक रहा है और वह सामान्य प्राकृत के रूप में भी प्रयुक्त होती रही है । अतः प्राचीन राजाओं ने जो अपने शिलालेख लिखाये हैं उनमें जनता की बोली प्राकृत का होना स्वाभाविक है। इस दृष्टि से सम्राट अशोक के द्वारा जो शिलालेख लिखाये गए हैं उनमें प्राकृत भाषा का प्रयोग हुआ है । उस प्राकृत में शौरसेनी प्राकृत की अनेक विशेषताएँ उपलब्ध हैं । डॉ0 नेमिचन्द्र शास्त्री ने इस ओर संकेत किया है।[28] इस क्षेत्र में अभी गहन अध्ययन की आवश्यकता है । इसी प्रकार सम्राट खारवेल के हाथीगुम्फा शिलालेख की भाषा भी शौरसेनी प्राकृत से प्रभावित है ।[29] प्राकृत के जो अन्य शिलालेख उपलब्ध हैं उनकी भाषा और शौरसेनी प्राकृत पर विचार किया जाना आवश्यक है विशेषकर मध्यदेश से प्राप्त राजा भोज के प्राकृत शिलालेख की भाषा पर ध्यान दिया जाना चाहिए।

शिलालेखीय साहित्य में जो प्राकृत की प्रवृत्तियाँ उपलब्ध हैं , उनमें से अधिकांश शौरसेनी प्राकृत के प्रयोगों से मेल खाती हैं । विशेषकर अशोक के पश्चिमी भारत जूनागढ़ , गिरनार से प्राप्त शिलालेखों में शौरसेनी प्राकृत तत्व अधिक हैं । यथा –

प्रवृत्ति	**गिरनार शिलालेख**	**शौरसेनी प्रयोग**
ऋकार के	मग< मृग	मअ< मृत (भाव. 33)
परिवर्तन	वुत्त< वृत्त	पुढवि< पृथिवी (षट.)
क्ष् को छ्	छुद< क्षुद्र	छुधार< क्षुध (प्र.सा.)
दन्त स् ध्वनि	पसति< पश्यति	पसत्थ< प्रशस्त (पंचा.135)
	सकं शक्यं	सक्क< शक्र (द्वा.अ.5)
	अभिसितेन<अभिषिक्तेन	संतोस< संतोष (निय.115)
ध्य का झ	मझम< मध्यम	झाणं<ध्यानं (निय.129)
	झख< अध्यक्ष	अज्झप्प<अध्यात्म (स.52)
प्रथमा में ओ	प्रियो< प्रियः	पाढो< पाठः (स.274)
	अनारंभो <अनालम्भः	आरंभो< आरम्भः (नि.56)
हलन्त को	परिसा< परिषद्	पच्छा< पश्चाद् (भाव.73)
अकार	कंम< कर्मन्	कम्म< कर्मन् (पंचा.58)
सप्तमी ए.व.	काले< काले	णयरे< नगरे (सम.30)
	ओरोधनम्हि<अवरोधने	समयम्हि <समये (प्र.सा.)
क' को 'ग'	लोगं< लोकम्	संग< स्वकं (प्र.सा.)
अन्य लेख में	अधिगिच्च<अधिकृत्य	वेदग< वेदक (षट्.)

इस प्रकार की अन्य प्रवृतियाँ और प्रयोग भी शिलालेखीय प्राकृत और शौरसेनी में उपलब्ध हो सकती हैं । अध्ययन का यह अभिनव विषय बन सकता है ।

सम्राट खारवेल के शिलालेख की भाषा और शौरसेनी प्राकृत में अपेक्षाकृत अधिक समानताएँ पायी जाती हैं । कतिपय प्रवृतियाँ दृष्टव्य हैं । यथाः–

प्रवृत्ति	**खारवेल शिलालेख**	**शोरसेनी ग्रन्थ**
ऐ और औ का	सेसय< शैशव	सेलो< शैलः (ति.1–66)
परिवर्तन	योवरंज <यौवराज्यं	ओसही<औषधि (ति.4–977)
थ् को ध्	रध< रथ	अधवा अथवा (पंचा. 44)
	पधमे< प्रथमे	अजधा<अयथा (प्रव. 84)
त् को ड्	पडिहार<प्रतिहार	पडिकमण<प्रतिक्रमण

---

28. प्रा. भा. और सा. का आ. इतिहास, पृ0 49–61
29. जैन, शशिकान्त ; द हाथीगुंफा इन्स्क्रप्शन आफ खारबेल एण्ड द भाब्रु एडिक्ट आफ अशोक ए क्रटिकल स्टडी, दिल्ली, 1971

प्रवृत्ति	खारवेल शिलालेख	शोरसेनी ग्रन्थ
संयक्त रेफ	सव< सर्व	सव्व<सर्व (पंच. 82)
का लोप	संपुण< सम्पूर्ण	सम्पुण्ण<सम्पूर्ण (प्र. चा. 72)
संयुक्त व्यंजन परिवर्तन–		
स्त–थ	थंभे<स्तम्भान्	थण< स्तन (भाव.18)
द्य–ज	विज्जाधर<विद्याधर	विज्जारह<विद्यारथ (स. 236)
ष्ट–ठ	अठ<अष्ट	अट्ठ< अष्ट (स.45)
पूर्व वर्ण सुरक्षित	ववहार<व्यवहार	ववहार<व्यवहार (प्र.97)
संख्यावाचक	वारसमे<द्वादशे	वारस< द्वादश (भा.80)
परिवर्तन	तेरस< त्रयोदश	तेरस< त्रयोदश (स.110)
स्वरभक्ति	रतनानि<रत्नानि	रदण< रत्न (प्रव.30)

शिलालेखों की अन्य प्रवृतियाँ सामान्य हैं , जो शौरसेनी प्राकृत में दृष्टिगोचर होती हैं । खारवेल का शिलालेख तो श्रमण परम्परा का ही शिलालेख है ।

नाटक एवं सट्टक साहित्य :

सिद्धान्त एवं दर्शन के ग्रन्थों के अतिरिक्त शौरसेनी प्राकृत का प्रयोग इस देश के प्राचीन नाटक साहित्य में भी हुआ है । परम्परा से जिन्हें संस्कृत नाटक कहा जाता है, वास्तव में उनमें प्राकृत अंश अधिक है । संस्कृत बोलने वाले तो 2–4 पात्र ही होते हैं, अधिकांश पात्र जन–जीवन की भाषा प्राकृत का प्रयोग करते हैं । प्राचीन नाटक **मृच्छकटिकं** तो प्राकृत का प्रतिनिधि नाटक है । ईसा की प्रथम शताब्दी से लगभग 17–18 वीं शताब्दी तक के संस्कृत नाटकों में प्राकृत का प्रयोग हुआ है ।[30] इन नाटकों की सामान्य/प्रमुख प्राकृत को शौरसेनी प्राकृत माना गया है । बाद में तो शौरसेनी प्राकृत में ही सट्टक लिखे गये है ,जिनमें कवि राजशेखर की **कर्पूरमंजरी** प्रमुख है । महाकवि भास के नाटकों में शौरसेनी प्राकृत की प्रमुखता है । विदूषक का एक शौरसेनी कथन द्रष्टव्य है–

अहो णअरस्स सोहासंपदि । अत्थं आसादिदो भअवं सुरयो दीसइ दहिपिंडपंडरेसु पासत्देंसु अग्गापणालिन्देसु पसारिअगुलमहुरसंगदो विअ । गणिआजणो णाअरिजणो अ अण्णोणाविसेदमंडिदा अत्ताणं दंसइदुकामा तेसु तेसु पासादेसु सविब्भमं संचरंति । अहं तु तादिसाणि पेक्खिअ उम्मादिअमाणस्स तत्तहोदो रत्तिसहाओ होमि त्ति णअरादो णिग्गदो म्हि ।

– नगर की शोभा कितनी सुंदर है ? भगवान् सूर्य अस्ताचल को पहुँचते हुए दिखाई देते हैं, जिससे दधिपिण्ड के समान श्वेतवर्ण के प्रासाद और अग्रभाग की दूकानों के अलिन्दों (कोठों) में मानो मधुर गुड़ प्रसारित हो गया है । गणिकायें तथा नगरवासी परस्पर विशेषरूप से सज्जित हो अपने आप का प्रदर्शन करने की इच्छा से उन प्रासादों में विभ्रमपूर्वक सन्चार कर रहे हैं । मैं इन लोगो को इस अवस्था में देखकर उन्मादयुक्त हो रात्रि के समय आपका सहायक बनूँगा, यह सोचकर नगर से बाहर चला आया हूँ।

संस्कृत नाटकों की प्राकृत के सम्बन्ध में भारतीय एवं विदेशी विद्वानों ने पर्याप्त विचार किया है ।[31] किन्तु पचास वर्षो में संस्कृत नाटकों के कई नवीन संस्करण प्रकाश में आये हैं । जैन नाटककारों के संस्कृत नाटकों पर भी शोध कार्य हुआ है । संस्कृत नाटकों में प्रयुक्त प्राकृत पर नये ढंग से प्रकाश डालने की आवश्यकता है ।[32] तभी **नाटकीय शौरसेनी** प्राकृत का स्वरूप स्पष्ट हो सकेगा । और यह प्रमाणित हो सकेगा कि प्राचीन समय में काव्य एवं साहित्य की भाषा भी प्राकृत थी , जिसमें प्रारम्भ में शौरसेनी प्राकृत की प्रधानता थी ।

———————————————————

30. जैन, जगदीशचन्द्र ; प्राकृत साहित्य का इतिहास, पृ0 513–533
31. द्रष्टव्य – लेखक का लेख ; ' विदेशी विद्वानों का जैनविद्या को अवदान' वैशाली बुलेटिन नं0 1, पृ0 232–44
32. (क) जैन, के. एल. ; रूपकार हस्तिमल –एक समीक्षात्मक अध्ययन ,वैशाली
(ख) जैन, राजाराम ; मध्यकालीन जैन सट्टक – नाटक, आरा, 1992

नाटकीय शौरसेनी प्राकृत :

नाटकीय शौरसेनी की विशेषताएँ प्राकृत वैयाकरणों एवं प्राकृत विद्वानों ने विस्तार से दी हैं ।[33] कतिपय प्रमुख विशेषताएँ यहाँ दृष्टव्य हैं । यथा–

1– अनादि में वर्तमान असंयुक्त त का द होता है । यथा–**मारुदिणा, मन्तिदो**

2– तावत् शब्द के आदि तकार को विकल्प से दकार होता है । यथा–**दाव, ताव**

3– थ के स्थान पर विकल्प से ध होता है । यथा–

कधं < कथम् कधेदि <कथयति कधिदं < कथितम् नाधो, नाहो< नाथः

4– नकारान्त शब्दों में सम्बोधन एकवचन में विकल्प से न् के स्थान पर अनुस्वार होता है– **भो रायं**< भो राजन्

5– भवत् और भगवत् शब्दों में प्रथमा विभक्ति के एकवचन में अनुस्वार होता है–एदु **भवं**, समणे **भगवं** महावीरे ।

6– र्य के स्थान पर विकल्प से य्य होता है–

अय्यउत्तो, अज्जउत्तो < आर्यपुत्रः **कय्यं, कज्जं**< कार्यम्

7– भू धातु के आकार को विकल्प से भ आदेश होता है–**भोदि, होदि**< भवति

8– इदानीम् के स्थान पर दाणिं आदेश होता है–

अनन्तर करणीयं **दाणिं** आणेवदु अय्यो ।

9–पंचमी विभक्ति के स्थान पर आदो और आदु आदेश होते हैं–**वीरादो , वीरादु**

10– ति के स्थान पर दि और ते के स्थान पर दे, दि आदेश होते हैं–**गच्छदि,गच्छदे**

11– क्त्वा प्रत्यय के स्थान पर इय, दूण और त्ता प्रत्यय होते हैं ।

यथा–भू+क्त्वा–इय	=	**भविय** <	भूत्वा
पढ+इय	=	**पढिय** <	पठित्वा
भू + दूण	=	**भोदूण** <	भूत्वा
पढ़+त्ता	=	**पढित्ता** <	पठित्वा[34]

शौरसेनी प्राकृत भारतीय आर्यभाषाओं के इतिहास से प्रारम्भिक रूप से जुड़ी हुई है । सूरसेन जनपद की भाषा शौरसेनी प्राकृत ने तीर्थंकरों के विभिन्न कालों, रामायण एवं महाभारत काल, वैदिक युग के विभिन्न स्तरों के जनजीवन से अपना सम्बन्ध स्थापित रखा है । भगवान् महावीर के युग के पश्चात् वह देश के विभिन्न भागों में जानी–समझी गयी । उत्तर से चलकर दक्षिण, पश्चिम, पूर्व में शौरसेनी प्राकृत साहित्य, शिलालेख और काव्य में प्रयोग की भाषा बन गयी थी । सिद्धान्त ग्रन्थों और नाटकों में सर्वाधिक प्रयोग के फलस्वरूप शौरसेनी को सामान्य प्राकृत के रूप में स्वीकार किया गया । अन्य प्राकृतों से उसके घनिष्ठ सम्बन्ध बने । इसलिए वह उनके विकास की आधार भाषा बनी । सामान्य प्राकृत के अधिकांश लक्षण धारण करती हुई शौरसेनी प्राकृत अपनी कुछ निजी विशेषताएं भी रखती है, जिनका वैयाकरणों ने उल्लेख किया है ।

शौरसेनी प्राकृत का ज्ञान विभिन्न प्राकृतों के अभ्यास के बिना अधूरा है । डॉ. उपाध्ये ने प्रवचनसार की भाषा का विश्लेषण करते हुए स्पष्ट कर दिया है कि इसमें अर्धमागधी की गई विशेषताएँ सम्मिलित हैं । शौरसेनी भाषा की पृष्ठभूमि में इस ग्रन्थ की भाषा विकसित हुई है तथा उस पर संस्कृत का भी पर्याप्त प्रभाव दृष्टिगत होता है । जब एक ग्रन्थ की भाषा का यह रूप है, तो समस्त सिद्धान्त–ग्रन्थों की भाषा में तो निश्चित ही अर्धमागधी, महाराष्ट्री , संस्कृत एवं नाटकीय शौरसेनी के रूप सम्मिलित मिलेंगें ही। क्योंकि इन सब की आधारभूत भाषा शौरसेनी प्राकृत रही है । सामान्य विशेषताओं के अतिरिक्त शौरसेनी प्राकृत के बहुत से ऐसे प्रयोग प्राप्त हैं जो उसे अन्य प्राकृतों से पृथक करते हैं ।

---

33. वररुचि , प्राकृत प्रकाश , 12वॉ परिच्छेद

34. प्राकृत दीपिका (डॉ. सुदर्शनलाल जैन), पृ. 118–12